P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-11* (Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

लोक–कला बनाम आधुनिक कला : लोकतत्वों के अविरल प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में

संगीता गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
एम॰एच॰(पी॰जी॰) कॉलेज,
मुरादाबाद

सारांश

लोक–कला, कला की प्राचीनतम् अभिव्यक्ति है इसका प्रादुर्भाव मानव स्वभाव और परिवेश के सामन्जस्य से हुआ है। इसके अनेक तत्व और मूल्य हैं जो सार्वभौमिक, सतत एवं गत्यात्मक है । इन लोक तत्वों का संसार अत्यन्त विस्तृत है जो प्रागैतिहासिक काल से लेकर अजन्ता, एलोरा और बाघ की गुफाओं से होता हुआ मध्य युगीन, आधुनिक एवं समकालीन कलाओं तक फैंला हुआ है। कलाकारों की प्रयोगधर्मिता ने लोक तत्वों को अपनी तरह से प्रयोग करके नये कला– स्वरूपों, कला– सम्प्रत्यों, एवं नवीन कला शैलियों को जन्म दिया है। वर्तमान में आधुनिक कला के विभिन्न रूपों के आलावा वस्त्र–उद्योग, आधुनिक आन्तरिक सज्जा, ज्वैलरी उद्योग, आर्किटेक्ट आदि विधाओं में लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हो रहा है।

मुख्य शब्द : लोकदर्शन, लोकोत्सव, प्रयोगधर्मिता, अजन्ता, अपभ्रंश शैली, कल्पसूत्र, कालीघाट, संन्थाल– नृत्य, तीज त्योंहार, लोकोत्तर–सौन्दर्य।

प्रस्तावना

वेद व्यास का कथन है– लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला व्यक्ति सर्वदर्शी होता है (प्रत्यक्षदीर्घा लोकानां सर्वदर्शी भवैन्नरः)। भारतीय शास्त्रों में लोक वेद, वैदिक, लौकिक, लोकधर्मी, नाट्यधर्मी शब्दों का विशेष अर्थों में प्रयोग व्यापक रूप से मिलता है। एक विद्वान के मत से– 'लोक के ज्ञान के लिए लोक भूमि पर खड़े होकर लोक–चेतना के स्तर पर लोक से जुड़ाव अनिवार्य है'। लोक के प्रति आस्था ही लोक–कला को वास्तविकता प्रदान करती है।

लोक के साथ–साथ अनेक समसामयिक शब्द अर्थाभिव्यक्तियों की प्रतीति कराते हैं। लोक से जुड़ा है लोकत्व, लोक मानसी स्थिति, लोकमन या लोक मानस, लोक प्रवृत्ति, लोक प्रेम, लोकदर्शन, लोकमूल्य, लोकधर्म, लोकाचार या लोकाचरण, लोक संस्कार, लोकरीति, लोक कथा, लोक वर्जना, लोकरंजन और लोकोत्सव। इन्हीं सब के प्रभावों से लोक संस्कृति, लोकभाषा, लोककला और लोकसाहित्य की पहचान बनती है। अगर इन सभी लोकविधाओं में एक चीज़ समान रूप से विद्यमान है, तो वह लोकतत्व है। इन लोक तत्वों के स्वरूप की गणना लगभग असम्भव है तथा इसमें उपकरणों, रूपाकारों और प्रकृतिजन्य साधनों से लेकर धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, ग्राम्य तत्व एवं प्रतीक सम्मिलित हैं। साथ ही साथ इन लोकतत्वों का संसार भी अत्यन्त विस्तृत है, जो प्रागैतिहासिक काल से लेकर अजन्ता, एलौरा और बाघ की गुफाओं से होता हुआ, मध्ययुगीन कला शैलियों को प्रभावित करता हुआ, आधुनिक एवं समकालीन कलाओं तक फैला हुआ है। कलाकारों की प्रयोगधर्मिता ने लोकतत्वों को अपनी तरह प्रयोग करके नये कला–स्वरूपों, कला सम्प्रत्यों एवं नवीन कला शैलियों को जन्म दिया है। आधुनिक कला में लोकतत्वों की भूमिका एवं प्रभाव जानने से पूर्व प्राचीन काल से लोकतत्वों के अविरल प्रभाव को जानना समीचीन होगा। तभी हम इस सन्दर्भ में लोकतत्वों की भूमिका की सम्यक् विवेचना कर सकेंगे।

मूल विषयः उदेद्श्य, अभिप्राय एवं प्रारूप

लोक संस्कृति में जहाँ लोकमूल्यों और लोक संस्कारों का महत्व है, वहाँ लोक साहित्य और लोक–कला का भी है। लोक–कला अनन्त लोक जीवन की धारा है जो न रूकती है, और न काल के प्रवाह से विछिन्न होकर गतिहीनता और शुष्कता को प्राप्त होती है। भारतीय जीवन में धर्म का महत्व तो है ही, लोक जीवन में भी धार्मिक अनुष्ठानों की एक लम्बी कड़ी प्राप्त होती है। परम्परा, रीति–रिवाज़, इसके कलेवर में रीढ़ की हड्डी की भाँति अपनी प्रतिष्ठा व महत्व को चरितार्थ करते हैं, जिससे इसका लोकतत्व परिष्कृत रूप में प्रस्तुत

होता है। प्रत्येक त्यौहार पर उससे सम्बन्धित मांगलिक चिन्हों व रूपों को बनाया जाता है।[1]

भारतीय कलाकारों ने देवी–देवताओं की काल्पनिक कृतियों का निर्माण करने में अधिक अभिरुचि प्रकट की है तथा तत्कालीन लोक जीवन की महती मान्यताओं को अपनी कला–कृतियों में ढालकर कला के आदर्श को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। लोक जीवन के प्रति भारतीय कलाकार की यह निष्ठा भारतीय कला के महान अभियान की सूचना थी, जिसका दर्शन हमें सिन्धु सभ्यता की उपलब्ध कलाकृतियों में होता है। राजपूत, मुगल और पहाड़ी इन मुख्य शैलियों की जितनी भी शाखाएँ हैं, उन सबमें धर्म की सर्वोपरि मान्यता है तथा इस धर्म का रूपांकन लोकतत्वों के माध्यम से जुड़ा हुआ है।

लोक–कला हमारे जीवन का एक अविच्छिन्न अंग है, वह हमारे प्रतिदिन के जीवन में विभिन्न रूपों में गुंथी हुई है। लोक–कला की ऐतिहासिक परम्परा का अपना अलग स्वरूप है, लोक कला की क्रमबद्धता तो बहुत प्राचीन है। इसका इतिहास कहीं लिखा नहीं गया, न ही किसी ने लिखना चाहा, पर जाने अनजाने दादी माँ के काँपते हाथों से उनके पोपले मुख से बहू बेटियाँ सुनती और गुनती रहीं, उन्होंने भी पढ़ा नहीं था, केवल सुना था, सीखा था। यही तो इसकी क्रमबद्धता है, यही इसका इतिहास है। लोकपरम्पराओं से दूरगामी और अत्यन्त प्राचीन कोई वस्तु नहीं है, वह तो हमारे मध्य शाश्वत सत्य के रूप में यह जीवित है।[2]लोक–कला जहाँ एक ओर समाज के अतीत के अनुभवों को संजोकर रखती है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान के भी प्राणों का स्पन्दन उसमें सुनाई देता है। यह युग–युगान्तर से चली आ रही परम्पराओं के साथ अपना योग विच्छिन्न नहीं होने देती।

प्रागैतिहासिक कला से मध्यकालीन कला तक लोक तत्व

प्रागैतिहासिक चित्रकला में मांगल्य तथा पूजा के चिन्ह, जैसे स्वास्तिक, त्रिशूल, चक्र, त्रिकोण आदि का प्रयोग किया गया है। जादू–टोना व टोटका के चिन्ह भी गुफाओं की भित्तियों पर बने हुए प्राप्त हुए हैं, जिनमें लोक मांगल्य की भावना निहित है। नृत्य की ताल पर थिरकते मानव, धनुष–बाण चलाते मानव, शिकार करते हुए मानव आदि का अंकन प्रागैतिहासिक मानव ने किया है। इन सब विषयों का लोक जीवन से गहरा सम्बन्ध है। प्रागैतिहासिक मानव ने प्रकृति प्रदत्त खनिज पदार्थ गेरू, रामरज, कोयला तथा खड़िया को ही रेखांकन और चित्रण का माध्यम बनाया। चित्रों में अधिकतर लाल, पीला, काला व सफेद रंग ही प्रयुक्त हुआ है। इन रंगों को पशुओं की चर्बी में मिलाकर लगाया गया है।[3]सिन्धुघाटी के लोग पक्की मिट्टी के बर्तनों को अलंकृत करते थे, उनमें पशु–पक्षी तथा मानव आकृतियाँ भी बनाते थे तथा कुछ ज्यामितीय नमूने भी बनाते थे। भारत में इस प्रकार की सामग्री मोहनजोदड़ों, हड़प्पा, चान्हूदड़ों एवं लोथल नामक स्थान में खुदाई के बाद प्राप्त हुई है। इन अलंकरणों में लोकशैली द्वारा निर्मित टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएँ, लहरिया रेखाएँ लोक–कला की परिचायक हैं।

अजन्ता गुप्तकालीन कला का ज्योतिर्मय आवास है। चित्रकला, मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला तीनों में लोकोत्तर सौन्दर्य मुखरित हुआ है। आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवन का चित्रण अजन्ता की चित्रकारी में मिलता है। एक ओर यदि नगर का चित्रण है तो दूसरी ओर मार्मिक ग्राम्य जीवन का चित्रण है। उस समय के चित्रों में लोक–तत्वों का समावेश मिलता है। आध्यात्मिक रूपों में देवी–देवता, किन्नर, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस आदि सभी का चित्रण यहाँ हुआ है।[4]राजप्रासादों और जन–जीवन की व्यस्तता के बीच कलाकारों ने प्रकृति के नैसर्गिक उपादानों से भी प्रेरणा ग्रहण की और चित्रण परम्परा में उत्सव लोक नृत्य, श्रृंगार, लज्जा, चिन्ता, काम, स्नेह, ममता, घृणा, राग–विराग आदि जीवन की समस्त क्रियाएँ तथा वीर साध्वी, राजा, भिखारी, बालक, रथारूढ़, और पैदल, राजदरबार और विशाल वन, शासक और शासित आदि का चित्रण किया गया है। अजन्ता के कलाकार सच्चे अर्थों में जीवनदर्शी थे और लोकजीवन से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था।[5]

बाघ गुफा के चित्रों में उल्लासपूर्ण जीवन को चित्रित किया गया है। नर्तक, गायक, कारीगर, विरहाकुल नारी तथा हाथी–घोड़ों के जुलूस आदि का चित्रण है। इन चित्रों में लोक तत्वों की अधिकता है।, यहाँ की छतों तथा दीवारों पर कमल तथा मोरों के अलंकरण किए गये हैं। तोता, मैना, कबूतर, हंस, सारस आदि को प्रतीकात्मक रूप से भी बनाया गया है। लोक जीवन से सम्बन्धित घोड़े, हाथी तथा बैलों का चित्रण किया गया है।[6] बादामी गुफा में राजा–रानी, नर्तक, विरहणी, चंवर झुलाती हुई स्त्री आदि का चित्रण मिलता है। ऐतिहासिक विषयों के साथ–साथ सामाजिक जीवन के चित्र भी बने हैं जिसमें लोक तत्वों व लोक जीवन की झलक है। शिव–विवाह के कई प्रसंग यहाँ चित्रित हैं।

मध्य युग की कला धार्मिक भावना से प्रेरित थी। कला, कला के लिए न होकर जीवन का विशिष्ट अंग थी। भारतीय जीवन से प्रथक् इस कला की कल्पना नहीं की जा सकती।[7] जन जीवन से अभिन्न रूप से सम्बद्ध यह कलामुख्यतः लोक–कला थी। इस कला का ध्येय किसी व्यक्ति–विशेष की रुचियों का प्रदर्शन करना नहीं था, बल्कि जन–जीवन की धार्मिक भावना को साकार करना था।

10वीं से 15वीं शताब्दी तक जैन चित्रों का निर्माण हुआ। ये चित्र अधिकतर ताड़ पत्रों पर बने हैं। जैन चित्र कागज़ तथा वस्त्रों पर भी निर्मित किये गये हैं। जैन चित्रों में पीले और लाल रंगों का विशेष प्रयोग हुआ है। देवी चित्रों एवं मूर्तियों की अल्हड़ता वस्त्र सज्जा, हस्त मुद्राएँ आदि सभी में कलात्मक लोक तत्वों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वस्त्राभूषणों की दृष्टि से जैन कला में धोतियों में लोक सज्जा दिखाई पड़ती है। साधुओं के वस्त्र मोती के समान सफेद रंग के दिखाये गये हैं। स्त्रियों को रंगीन साड़ी, चोली तथा चूनर पहनायी गयी है। स्त्रियों के मुख पर टिकुली, कानों में कुण्डल, बाहों में बाजूबन्द चित्रित किये गये हैं, जो लोक कला के अन्तर्गत आते हैं। जैन कला में तत्कालीन लोक जीवन की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति हुई है।

अपभ्रंश शैली के चित्र तीन रूपों में उपलब्ध होते हैं, ताड़पत्रीय पोथियों पर, कपड़े पर और कागज़ पर। इस

प्रकार के चित्र भारत, अमेरिका तथा ब्रिटेन के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इस अपभ्रंश शैली की अधिकतर चित्र पोथियाँ जैन धर्म से सम्बद्ध हैं। अपभ्रंश शैली के चित्रों में लोक–कला की सी सादगी है तथा उसमें तत्कालीन लोक–जीवन की सच्चे अर्थों में अभिव्यक्ति हुई है। अपभ्रंश शैली वाले कागज़ पर चित्र भी मुख्यतः पोथियों में पाये जाते हैं। कागज़ की विशिष्ट प्रतियों में जौनपुर वाला "कल्पसूत्र" है, जो कि लोक शैली के बहुत निकट है। अपभ्रंश शैली के "रति रहस्य" नामक सचित्र ग्रन्थ में "कामदेव" का चित्रण है, जो लोकतत्वों से ओतप्रोत है।[8]

राजस्थान में दूसरी शती से छठीं शती तक के बने मन्दिरों में कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र मिले हैं, जिसमें वासुदेव का कृष्ण को गोकुल ले जाना, कृष्ण का यशोदा के घर लालन–पालन, पूतना वध, कालिया दमन, माखन चोरी आदि का चित्रांकन लोक शैली में हुआ है। बीकानेर के पास सूरजगढ़ में चौथी व पाँचवीं शती के मिट्टी के खिलौने प्राप्त हुए हैं, जिन पर गोवर्धन धारण तथा दान लीला का दृश्यांकन लोक शैली में अंकित है। राजस्थानी चित्रकला राजा महाराजाओं के विलासमय रंगीले जीवन से प्रेरणा पाकर भी गरीब की झोपड़ी तक में अपना अस्तित्व रखती थी।[9] फलतः उसकी उन्नति और अवनति किसी आश्रयदाता पर निर्भर न थी। धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक नानाविध प्रणय लीलायें, मान–मनौवल, संयोग–वियोग के दृश्य, ऋतु वर्णन, तीज–त्यौहार, गणगौर, होली, दशहरा, बसन्त, वट पूजन, कार्तिक स्नान, शिवपूजन, जलक्रीड़ाएँ, रास लीलाएँ, लघु कथाएँ, लोक कथाएँ, पाबूजी की कथा जन जीवन, ग्रामीण दृश्य आदि विषयों में लोक तत्वों की अभिव्यंजना की गई है। यहाँ के लोकचित्र मानव जाति के कल्याण और आनन्द की प्राप्ति के लिए चित्रित किये गये हैं। यहाँ की कला जन–जीवन को प्रेरणा और राष्ट्र के जन–जागरण में अपना हाथ रखती है। इसकी उपयोगिता यहाँ के जनमानस के हृदय स्थल पर अंकित है और पैतृक रूप से प्राप्त है।

राजस्थानी चित्रकला में कार्तिक–स्नान, शिवपूजन, वटपूजन आदि ग्रामीण तथा जन जीवन से सम्बन्धित अनेकों चित्रों की रचना की गई है, जिसमें लोक तत्वों की अभिव्यंजना की गई है। राजस्थानी चित्रकला की सभी शैलियों में लोकतत्व मिलते हैं अन्तर केवल इतना है कि किन्हीं शैलियों जैसे मालवा, नाथद्वार, जोधपुर, बूंदी में अधिक लोकतत्वों की अभिव्ंजना हुई है, तो किन्हीं शैलियों में कम।[10] वैसे भारतीय चित्रकला का ही एक अंग लोक कला है और राजस्थानी चित्रकला में भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं की जड़ें मौजूद हैं। इसी प्रकार अवध, पहाड़ी, कश्मीरी, मुगल, बंगाल तथा आधुनिक कला के सभी रूपों में लोक कला के विभिन्न तत्व स्वरूप और आयाम दृष्टिगोचर होते हैं।

आधुनिक एवं समकालीन कला में लोक तत्व

भारतीय आधुनिक कला में लोक तत्व को समाहित करने में शान्ति निकेतन के कलाकारों ने आरम्भिक प्रयोग किये। लोक तत्व, भारतीय लोक कला में वह तत्व हैं, जो मात्र बाह्य आँखों से ही नहीं देखा जा सकता, बल्कि उसे अन्तरतम प्रक्रिया से महसूस किया जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष परिवर्तन के ऐसे काल में था, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं नैतिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहा था। इस प्रकार से भारत ने मध्यकालीन युग से निकल कर आधुनिक युग में कदम रखा। आधुनिक काल के मानवतावादी और इहलौकिक दृष्टिकोण ने हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं आस्थाओं को नवीन स्वरूप देते हुए उनमें निहित लोक तत्वों एवं मूल्यों को जीवित बनाये रखा। किसी भी देश की लोक कला उसके चिन्तन–दर्शन और साहित्य का सारतत्व होती है। यह एक ऐसी सांस्कृतिक विरासत है जो कल्प बेल की तरह जीवन की निरन्तरता का सन्देश देती है।

इस युग में बहुत से कलाकारों ने पदार्पण किया, जिसमें यामिनी राय निर्विवाद रूप से बीसवीं शताब्दी के उन्नत कलाकारों में गिने जाते हैं। इन्होंने अपने रचना संसार को लोक कला के साथ जोड़ दिया। जिस प्रकार अफ्रीकी जन जातीय कला ने पिकासो एवं गोगा को प्रभावित किया, ठीक उसी प्रकार बंगाल के कालीघाट चित्रों ने उन्हें इतना प्रभावित किया कि अंग्रेजी पद्धति में पढ़ने के बावजूद उन्होंने अकादमिक पद्धति से चित्र बनाना छोड़ दिया। यामिनी राय के चित्रों में लोक कला के रंग, रेखाएँ, धरातल सभी कुछ नज़र आता है। "यामिनी राय के चित्रों का आधार अजन्ता कला, राजस्थानी कला, पहाड़ी कला या मुगल कला (जो बंगाल शैली का आधार था) न होकर, बंगाल की लोक कला थी।"[11]

कला के क्षेत्र में यामिनी राय का नाम इसलिए विख्यात नहीं है कि उन्होंने कला का कठिन मार्ग अपनाया बल्कि वे इसलिए विख्यात हैं कि उन्होंने एक चित्रकार के रूप में माटी की गंध को महसूस किया और भारतीय विशुद्ध लोक–कला रूपों को अपने चित्रों का विषय बनाया। उन्होंने कला में पश्चिम के अनुसरण की प्रचलित धारा को तोड़कर बंगाल की लोक कला को निजी अनुभवों का जामा पहनाकर एक विशिष्ट लोकोन्मुख शैली का विकास किया। उन्होंने लोक एवं आधुनिक कला की भाषा को भली–भाँति समझा कर अपनी स्वतंत्र चित्र भाषा विकसित कर ली थी, शायद इसलिए उन्होंने भारतीय आधुनिक कला का पितामह कहा जाता है। 'यामिनी राय ने लोक जीवन को अपनी कला का पाथेय बनाया और ऐसी कृतियों की सर्जना की जिससे सही मायनों में भारतीय कला अपने जातीय लोकधर्मी स्वरूप में खिल उठी।'[12] उनके कुछ चित्र जैसे : तीन स्त्रियाँ, गायों के साथ कृष्ण, ईसा मसीह और क्रास, ईसा मसीह का अन्तिम भोज, संथाल नृत्य आदि आधुनिक भारतीय कला के अद्वितीय उदाहरण हैं।

निष्कर्ष, सुझाव एवं प्रासांगिकता

प्रसिद्ध कला समीक्षक एवं कलाकार रामचन्द्र जी लिखते हैं, "प्रथम दृष्टया मुझे यामिनी राय के चित्रों में कोई विशेष बात नहीं दृष्टिगोचर हुई परन्तु अनेक देशी–विदेशी लेख पढ़ने के बाद मैंने यामिनी राय व उनके चित्रों का अध्ययन किया। फिर उस समय मुझे काशी की तमाम दीवारों में बने बड़े–बड़े लोकशैली के चित्र भी देखने को मिले। उनसे प्रेरणा ग्रहण करके हमने 'काशी शैली' के नाम से नयी शैली की स्थापना की, इनमें मेरे छात्रों ने भी पूरा योगदान दिया।"[13] रामचन्द्रजी ने

लोक कला का गम्भीर अध्ययन किया और 'काशी शैली' को निखारने–सँवारने का प्रयास किया। वास्तव में 'लोक कला में आधुनिक कला के भी अनेक गुण विद्यमान हैं। यदि लोक कलाओं का सार्थक अध्ययन किया जाय तो हम अपनी आधुनिक शैली का निर्माण भी कर सकते हैं। .. . यदि हम अपनी लोक कलाओं का तात्विक अध्ययन कर लें तो भारत की मौलिक आधुनिक कला का निर्माण करने में भी सफलता मिलेगी और पश्चिमी आधुनिक कला का पिछलग्गू बनने की जरूरत नहीं पड़ेगी'।[14]

लोक कला की सरलता, प्रतीकात्मकता, प्रतिरूपात्मकता तथा छाया का अभाव आदि विशेषताएँ आधुनिक कलाकारों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी और भारतीय 'लोक कला' आँगनों के मंच से विकसित होकर विश्वमंच पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। इस उपलब्धि का प्रमुख श्रेय बंगाल के प्रख्यात लोक कलाकार 'यामिनी राय' को है। वहीं नन्दलाल बसु, विनोद बिहारी मुखर्जी ने भी लोक जीवन से प्रेरणा ली। 1940–50 ई के मध्य दक्षिण के कुछ कलाकार, आलमेलकर, श्री निवासलु तथा पंडीराजू भी लोककला की आकृतियों से प्रभावित हुए।[15] अन्य कलाकार जिन्होंने लोक–कला की खिलौनों के समान मुद्रओं तथा आकृतियों का प्रयोग किया है वे हैं– जे॰ सुल्तान अली, लक्ष्मण पै, ज्योति भट्ट, भगवान कपूर, सतीश गुजराल, देवयानी कृष्ण, सुनील याधव, जैराम पटेल, परितोष सेन, गौतम वघेला आदि। साथ ही साथ अनेक समकालीन कलाकारों का झुकाव लोक कलाओं के प्रति उल्लेखनीय है। रमेश चन्द्र साथी, योगेन्द्रनाथ 'योगी', ह्रदय नारायण मिश्रा, प्रभा पवार, वसुधा, मुनि सिंह, ईश्वरचन्द्र गुप्त के नाम इस सन्दर्भ में उल्लेख प्राप्त करते हैं। इन कलाकारों ने रंग, ब्रश के द्वारा लोक कलाओं के मर्म को उजागर करने का सार्थक प्रयास किया है। लोक कला के प्रतीकों, संकेतों, मोटिव का भरपूर उपयोग किया है।

समकालीन कला के वैविध्य का प्रभाव लोक–कला कृतियों पर भी देखा जा सकता है। समकालीन कलाकार लोक कला के प्रतीकों, चिन्हों, मोटिव को अपनी कृतियों, नवीन रूपाकारों रंग योजनाओं के माध्यम से अपनी कृतियों को निरूपित कर रहे हैं। आज लोक–कला केवल भारतीय घर–आँगनों तक ही सीमित नहीं है, वरन् वह आज विश्व पटल पर पहुँच रही है। जिस प्रकार समकालीन कला में वैविध्य का आन्दोलन छिड़ा है, जिसके कारण रेखाओं, रंगों, माध्यमों, विषय–वस्तुओं और शैलियों के निरन्तर नये प्रयोग हो रहे हैं, उसी प्रकार लोक कला भी प्रयोग धर्मिता की ओर कूच कर चुकी है। क्योंकि लोक–कला के कलाकार इसी समय के हैं अर्थात वे समकालीनता के प्रभाव से कैसे वंचित रह सकते हैं।

वर्तमान में आधुनिक कला के विभिन्न रूपों जैसे : मूर्ति कला, चित्रकला, लघु चित्र, वस्त्र उद्योग, बर्तन उद्योग, आधुनिक आन्तरिक सज्जा, नवीन प्रचलनों, ज्वैलरी उद्योग, डिजायनिंग, आर्किटेक्ट आदि अनेक आधुनिक विधाओं लोक तत्वों की प्रचुर उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है, इससे प्रतीत होता है कि लोक–कला ने आधुनिक कला को न केवल प्रभावित किया है बल्कि नवीन प्रयोगधर्मिता से कला नवीन रूपों को जन्म दिया है

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ॰ गोपाल मधुकर : भारतीय चित्रकला, पृ॰ सं॰ 153.*
2. *डॉ॰ आर॰के॰ अग्रवाल : भारतीय चित्रकला का विकास, पृ॰ सं॰ 195.*
3. *डॉ॰ नगेन्द्र : भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला, पृ॰ सं॰ 197.*
4. *वाचस्पति गैरोला : भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ सं॰ 105.*
5. *सिंह एवं यादव : भारतीय संस्कृति और कला, पृ॰ सं॰ 28.*
6. *डॉ॰ गिरिराज किशोर अग्रवाल : कला और कलम, पृ॰ सं॰ 182.*
7. *पूर्वोक्त, पृ॰ सं॰ 184.*
8. *डॉ॰ प्रेमचन्द गोस्वामी : दैनिक जागरण, दिल्ली, 14 अगस्त 1989.*
9. *डॉ॰ नगेन्द्र : भारतीय साहित्य, संस्कृति एवं कला, पृ॰ सं॰ 89.*
10. *जिनदास जैन : भारतीय चित्रकला का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ॰ सं॰ 152–157.*
11. *रामचन्द्र शुक्ल : "लोक कला आधुनिक कला की जननी है", कला त्रैमासिक, लखनऊ (उ॰प्र॰) जनवरी–मार्च 2002, पृ॰ सं॰ 23–24.*
12. *ज्योतिष जोशी : आधुनिक भारतीय कला (पीतले सौ वर्षों के कलाकारों पर एक अध्ययन), यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ॰ सं॰ 51.*
13. *रामचन्द्र शुक्ल : "लोक कला आधुनिक कला की जननी है", कला त्रैमासिक, लखनऊ (उ॰प्र॰) जनवरी–मार्च 2002, पृ॰ सं॰ 24.*
14. *रामचन्द्र शुक्ल : "लोक कला आधुनिक कला की जननी है", कला त्रैमासिक, लखनऊ (उ॰प्र॰) जनवरी–मार्च 2002, पृ॰ सं॰ 24.*
15. *समकालीन भारतीय कला (ललित कला अकादमी) अंक 28 नवम्बर 2005–फरवरी 2006.*